पुस्तक समीक्षा

प्रार्थनाओं में छिपा सत्य

- डॉ. अनूपा चौहान

डॉ अनूपा चौहान. प्रार्थनाओं में छिपा सत्य, आखर हिंदी पत्रिका,
खंड 1/अंक 1/सितंबर 2021,(80-83)

साहित्य में स्त्रियों की स्थिति को लेकर वर्जीनिआ वूल्फ ने एक प्रसिद्ध यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय को देखते हुए कहा था कि इन हजारों पुस्तकों में से स्त्रियों की लिखी पुस्तकें कितनी हैं! आज भी स्त्री की साहित्यिक स्थिति को लेकर बहुत बड़ा परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है। इसका एक कारण यह है कि स्त्री को इस योग्य समझा ही नहीं गया कि उसे सुना या पढ़ा जाए। उसे लेकर एक सवाल हमेशा उठाया गया कि जिसकी दुनिया केवल चारदीवारी के भीतर खत्म हो जाती है उसके पास कहने या सुनाने के लिए बचता ही क्या है? 'आहटें' के संदर्भ में भी यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि इस एक सौ बारह पृष्ठों की किताब में ऐसा क्या कहा जा रहा है जो लोगों सुनना चाहिए? जबकि इसकी अधिकांश कविताएँ प्रार्थनाएं हैं, कुछ जीवन की दार्शनिकता पर बात करती हैं, कुछ एक माँ के रूप में लिखी गई रचनाएं हैं तो कुछ बेटी के रूप में, बहुत कम रचनाएँ ही हैं जो सामाजिक समस्याओं पर बात करती हैं तो फिर ऐसा क्या है जो इन्हें पठन योग्य बनाता है?

दरअसल पितृसत्ताक समाज की यह विशेषता रही है कि उसने जो सुनना चाहा वही सुना है। जैसे मीरा के भजन केवल आराधना नहीं है वे अपने समय का दस्तावेज हैं लेकिन कल तक उन्हें हमसे ईश्वर की आराधना भर माना गया। कविता हमेशा दो पंक्तियों के बीच पढ़ी जाने वाली विधा है। जो लिखा गया है वह क्यों लिखा गया है यह जानना पाठक के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाता है। 'आहटें' की प्रार्थनाएँ क्या कहती हैं? और जो कहती हैं क्यों कहती हैं? रचनाकार स्वयं उसका जवाब देते हुए लिखती हैं

"जीवन के इस अनुभव सफर में अनेक उतार चढ़ाव मन में हलचल पैदा करते हैं। उस उहापोह से गुजरते हुए दोहरी जिन्दगी बिताते हैं हम। अपनी आतंरिक दुनिया को अभिव्यक्त करने का, बाहरी दुनिया में सामंजस्य स्थापित कर जीवन सफर तय करने का प्रयत्न 'आहटें' द्वारा किया गया है।"

यह बात एक पुरुष करता है तब आत्मश्लाघा होती लेकिन स्त्री के लिए आतंरिक और बाह्य जगत के बीच सामंजस्य स्थापित करना वास्तव में मुश्किल है। इसी के चलते सुमन जी प्रार्थनाओं का सहारा लेती हैं। वैसे यह उनका मिज़ाज नहीं है। यह बात उनकी प्रार्थनाओं की भाषा बताती है जो कि बड़ी शिथिल है

ज्ञान दिया है परम पिता तूने,
तन-मन अपना पवित्र रख न सका।

शक्ति देना हे परमपिता परमात्मा
पाकर मुक्ति अपने कर्मों से
चरणों में तेरे अपना सिर झुकाऊँ

तेरी दया का चरणामृत
अंत समय भी चख पाऊँ।

जीवन के जिस दोहरेपन की सुमन जी ने अपनी पुस्तक की भूमिका में बात की है वह उनकी कविताएँ स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है। प्रार्थनाओं की भाँति ही उनकी दार्शनिक कविताओं में भी सहजता नहीं है हर रोज···, ख्वाब, या ऐसी ही अन्य रचना की भाषा में रवानगी नहीं आती। तब फिर ये प्रार्थनाएँ या दार्शनिकता एक मुखौटा है या मजबूरी?

इन बीहड़, अकेले रास्तों से गुजरते हुए
हर बार सोचकर यही
कि सफर यह आखिरी होगा
मन को समझाना होता है।

सामान्य रूप से जीवन का रास्ता कभी बीहड़ और अकेला नहीं होता। रास्ते तभी मुश्किल होते हैं जब आसपास का माहौल उन्हें ऐसा बनाता है। 'अहसास' कविता में इस बात की पुष्टि होती है। यह सोचना कि सफर अंतिम है, आत्मवंचना है। इतने बड़े संसार में स्वयं को इतना अकेला पाना स्त्री जीवन की विडंबना है। यूँ तो वर्जीनिया वूल्फ का मानना है कि स्त्री के पास अपना एक अलग कमरा और भरा

हुआ बटवा हो तो स्त्री की सामाजिक स्थिति में बदलाव आ सकता है। लेकिन आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री की स्थिति नहीं बदल पाई। इस पर सिमोन द बुवा ने बताया कि जब तक समाज में स्त्री को दोयम दर्जे पर रखा जाएगा, उसे 'The other' - 'अन्य' समझा जाएगा उसकी स्थिति जस की तस बनी रहेगी। सुमन जी का अकेलापन अनायास ही नहीं है। वे अपने 'अन्य' होने के अर्थ को जानती हैं, वे अपनेपन को तरसती हैं और अपनेपन के छलावे को भी पहचानती हैं यही वजह है कि उससे मुक्त होना चाहती हैं। अपने आसपास के लोगों का अपनापन उन्हें अंधकारमय लगता है

गहरे समंदरों में रोशनी की तलाश
न कभी खत्म होती है नहीं
अंधेरों से जुड़ पाती हूँ,

सदियों से भटकती हूँ
किसी को भी 'अपना' नहीं पाती हूँ।

यह कहना कितना आसान है कि सुमन जी की कविताओं पर तथाकथित पश्चिमी नारीवाद का कोई असर नहीं है। वे जीवन की बात करती हैं, उनके पास प्रकृति है, फूल पत्ते पेड़-पौधे सब कुछ तो है। बिलकुल है लेकिन बेरंग है। एक धुंधले आवरण से झांकती हुई प्रकृति एक किसी बड़े तिलस्म को अनावृत्त करती है। रचनाकार का यह तिलस्म अनायास नहीं है। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को अपने द्वारा निर्मित अनेक साँचों में ढल रखा है जिसे स्त्री स्पष्ट रूप से समझ नहीं पाती। एक ऐसी बेटी जिसने अपनी माँ के उस जीवन को देखा है जहाँ आँसू छिपा कर मुस्कान बिखेरने में ही जीवन की सफलता मानी जाती है। माँ के इस द्वंद्व को, उसके त्याग को पितृसत्ताक समाज के द्वारा इतना अधिक महिमामंडित किया जाता है कि घर की बेटियाँ उससे अलग कुछ बनना नहीं चाहती। वह अपनी माँ की ही भाँति पितृसत्ताक समाज की दी हुई श्रृंखलाओं के साथ जीना सही समझती है।

करवा चौथ पर सजती तेरी
मूरत, आज भी नजरों में है,
हर दिन की अहमियत को
निभाते, हर त्यौहार खुशियों से मानते
मैंने तुझे देखा है माँ
छोटी-छोटी बातों में खुश होना
सब्र करना हर गम सहना,

माँ मैंने तुझसे सीखा है।
अपने जीवन का हर पाठ
माँ मैंने तुझसे ही तो सीखा है।

हमारी व्यवस्था ने स्त्री को परंपरा के नाम पर, आदर्शों के नाम पर सांचे में ढालने की कोशिश की है। व्रत और त्यौहार इसके औज़ार हैं। लेकिन सुमन अपनी इस स्थिति में लंबे समय तक नहीं रह सकती। वह जल्द ही अपना वजूद ढूंढने की कोशिश करती है। और यहीं से सुमन अपनी पहचान बनाती है

मुझे मेरे हिस्से की जमीं मेरा आसमान चाहिए,
मुझे मेरा साज ओ सामां; मेरा मकान चाहिए।
किसी की पत्नी, न माँ, न बेटी बनकर जियूँ,
मेरे वजूद को अपने नाम का अलग सम्मान चाहिए।

यहाँ हम पाते हैं शब्द अपनी सहजता में चले आते हैं। चयन की कोई आपा-धापी नहीं है। निर्द्वंद्व भाव से वही कहा है जो कहना है। न दीनता है, न आर्द्रता। अपने आत्मसम्मान के लिए आवाज बुलंद कर हक की बात करने की जो हिम्मत इस रचना में मिलती है यही सुमन जी की पहचान है।

न मशवरे दो मुझे उजालों के,
लड़ने दो अंधेरों से धीरे-धीरे।

यह धीरे-धीरे लड़ना ही किसी भी स्त्री का अपने अस्तित्व के लिए असली संघर्ष है। स्त्री का यह संघर्ष बाहरी विश्व के साथ तो है ही, उसके भीतर का विश्व के साथ भी है। 'अजन्मी बेटी की अंतर्वेदना' १-२ में सुमन स्त्री हृदय के द्वंद्व को उजागर करती हैं। स्त्री का जीवन संघर्ष जन्म से पूर्व ही शुरू हो जाता है। उसे इस दुनिया में आना है या नहीं यह कोई और तय करता है, इस पर अगर इस दुनिया में वह आ भी गई तो वह कितनी सुरक्षित रह पाएगी यह बता पाना मुश्किल है। स्त्री के जीवन के इन अनेक संघर्षों को पहचानते हुए अपने आसपास फैले व्यापक जगत के साथ सुमन जी ने अपने भीतर के जीवंत विश्व को अपनी कविताओं में सफलता से तलाशा है।